

पी. चंद्रशेखरन् एवं अन्य

बनाम

एस. कनकराजन् एवं अन्य

27 अप्रैल, 2007

(एस.बी. सिन्हा और मार्कंडेय काटजू, न्यायमूर्तिगण)

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908:

धारा 100 — द्वितीय अपील — विधि का सारवान् प्रश्न — अभिनिर्धारित: किसी दस्तावेज का ऐसा निर्वचन जो वाद के किसी पक्षकार के स्वत्व के मूल से जुड़ा हो, विधि के सारवान् प्रश्न को जन्म देगा। जब अधीनस्थ न्यायालयों ने अन्य दस्तावेजों और वाद संपत्ति की पहचान के मानचित्र के साथ पठित स्वत्व के दस्तावेज का गलत पाठ और गलत निर्वचन किया हो, तब उच्च न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए विधि का एक सारवान् प्रश्न उत्पन्न हुआ।

आदेश 22 नियम 4 — प्रत्याक्षेप का उपशमन — अभिनिर्धारित: यह प्रश्न कि कोई वाद या कोई अपील उपशमित हुई है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। चूंकि यह प्रश्न उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय, अपील में, तथ्य के विवादित प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है। भारत का संविधान, 1950 — अनुच्छेद 136

वादीगण की द्वितीय अपील को खारिज करने और कतिपय संपत्तियों के संबंध में प्रतिवादीगण के प्रत्याक्षेप को मंजूर करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय से उत्पन्न, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका में, यह तर्क दिया गया था कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधारा (4) के उपबंध प्रत्याक्षेपों के संबंध में आकर्षित होंगे। उक्त तर्क को स्वीकार कर लिया गया और मामले को उच्च न्यायालय को

उचित विधि का सारवान् प्रश्न विरचित करने के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने संपत्तियों के विवरण से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य की उपेक्षा करने और उन पर विचार न करने में अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के औचित्य पर विधि के दो सारवान् प्रश्न तैयार करने के पश्चात, प्रत्याक्षेप को मंजूर कर लिया, और उक्त निर्णय को वादीगण द्वारा वर्तमान अपील में चुनौती दी गई थी।

अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए कथित प्रश्न विधि के सारवान् प्रश्न का गठन नहीं करते हैं, और चूंकि उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए विधि के प्रश्नों में संदर्भित सभी सुसंगत दस्तावेजों में एक दस्तावेज में संपत्ति का विस्तृत विवरण दिया गया था, इसलिए वह स्वतः ही विधि के सारवान् प्रश्न को जन्म नहीं देगा; और इस तथ्य को देखते हुए कि मुकदमेबाजी के पिछले दौर में द्वितीय अपील के लंबित रहने के दौरान, प्रत्याक्षेपकर्ताओं में से एक की मृत्यु हो गई थी; और, इस प्रकार, प्रत्याक्षेप का उपशमन हो जाने के कारण, और दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 नियम 4 के तहत निर्धारित अवधि के भीतर प्रत्याक्षेपकर्ता की संपदा के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने के लिए कोई आवेदन दायर न किए जाने के कारण, आक्षेपित निर्णय संधारणीय नहीं हो सकता है।

अपील को खारिज करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित: 1.1. किसी दस्तावेज का ऐसा निर्वचन जो वाद के किसी पक्षकार के स्वत्व के मूल से जुड़ा हो, निर्विवाद रूप से विधि के एक सारवान् प्रश्न को जन्म देगा। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के लिए जो निषिद्ध है, वह तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना है। यह सीमित क्षेत्राधिकार, अन्य बातों के साथ-साथ, तब प्रयोगात्मक हो जाती है जब निष्कर्ष साक्ष्य के गलत पाठ पर आधारित हों या इतने विकृत हों कि कोई भी तर्कसंगत या सामान्य समझ

वाला व्यक्ति उक्त दृष्टिकोण नहीं अपना सकता था। [कंडिकाएं 13 और 14) [973-बी, सी, डी]

1.2. संपत्ति के कब्जे की बहाली के वाद में, न्यायालय संपत्ति की पहचान का अवधारण करेगा। जब अधीनस्थ न्यायालयों ने अन्य दस्तावेजों और वाद भूमियों की पहचान के मानचित्र के साथ पठित स्वत्व के दस्तावेज का गलत पाठ और गलत निर्वचन किया, जिस पर स्वयं वादीगण ने अवलंबन किया था, तब वाद के पक्षकारों के बीच उच्च न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए विधि का एक सारवान् प्रश्न उत्पन्न हुआ। [कंडिकाएं 10 और 19] [972-ए, बी; 975-जी; 976-ए]

सीमा शुल्क आयुक्त (निवारक) बनाम विजय दशरथ पटेल, (2007) 4 एस.सी.ए.एल.इ 132; *रेवरेंड फ़ादर एम.एस. पौलोस बनाम वर्गीज व अन्य*, [1995] अनुपूरक 2 एससीसी 294 और *हीरो विनोद बनाम शेषम्मल* [2006] 5 एससीसी 545 पर अवलंबन लिया गया।

2. यह प्रश्न कि कोई वाद या कोई अपील उपशमित हुई है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्य पर निर्भर करेगा। यदि ऐसा प्रश्न उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया होता, तो उत्तरदाताओं यह दिखा सकते थे कि उनका प्रत्याक्षेप उपशमित नहीं हुआ था क्योंकि मृतक प्रत्याक्षेपकर्ता की संपदा का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व किया गया था। वाद या अपील के उपशमन के संबंध में प्रश्न नहीं उठाया गया है। यह न्यायालय इस चरण पर तथ्य के इस विवादित प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है कि क्या मृतक प्रत्याक्षेपकर्ताओं की संपदा का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हुआ है या नहीं। [कंडिकाएं 21 और 23) [976-बी, सी; 977-सी, डी]

मिथाईलाल दलसाँगर सिंह व अन्य बनाम अन्नाबाई देवराम किनी व अन्य, [2003] 10 एससीसी 691 पर अवलंबन लिया गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2007 की दीवानी अपील संख्या 2206।

मद्रास स्थित उच्च न्यायालय द्वारा एस.ए. संख्या 1674/1982 में प्रत्याक्षेप में पारित दिनांक 13.09.2002 के अंतिम निर्णय और आदेश से उत्पन्न।

एस. बालकृष्णन, और सुब्रमण्यम प्रसाद, अपीलकर्ताओं के लिए।

वी. प्रभाकर, रामजी प्रसाद, वी. सुब्रमणि और रेवती राघवन उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाया गया:

एस.बी. सिन्हा, न्यायमूर्ति 1. अनुमति प्रदान की जाती है।

2. वाद में वादीगण हमारे समक्ष अपीलकर्तागण हैं। उन्होंने एक वाद दायर किया था जिसे मूल वाद संख्या 1132/1974 के रूप में अंकित किया गया था; इसमें कुल मिलाकर 10 अनुतोषों की प्रार्थना की गई थी। हम यहाँ अनुतोष संख्या 8 और 9 से संबद्ध हैं। अनुतोष संख्या 8 एक ऐसी भूमि के संबंध में था जिसका माप 15-1/2 फीट x 21 फीट था, जबकि अनुतोष संख्या 9 एक ऐसी भूमि के संबंध में था जिसका माप 40 फीट x 20 फीट था। उक्त भूमियों को कथित तौर पर अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती-हित-अधिकारी द्वारा दिनांक 16.9.1935 के एक विक्रय विलेख द्वारा खरीदा गया था। उक्त विक्रय विलेख में प्रश्नगत संपत्तियों का विवरण इस प्रकार दिया गया है:

"तिरुचिरापल्ली जिला में, श्रीरंगम उप-जिला, तिरुचिरापल्ली तालुक, थिम्मरायासमूद्रम गाँव, श्रीरंगम नगरपालिका द्वितीय वार्ड, अयन पुंजा, टी.एस. संख्या 1960/1 में, 24 सेंट में से पश्चिमी तरफ का 8 सेंट, अयन पुंजा टी.एस. संख्या 1960/4 में 6 सेंट में से, पश्चिमी तरफ का 3 सेंट, इसके भीतर एक फूस का घर, खाली भूखंड जिसमें ईंट की दीवार, पूर्व से पश्चिम की ओर का दरवाजा आदि शामिल हैं, साथ ही उपरोक्त टी.एस. संख्याओं में सामान्य मार्ग के अधिकार जो संपत्ति के 8 सेंट से संबंधित हैं, जिसके चारों ओर की सीमाएं इस प्रकार हैं:

उत्तर में वेलायुथम पिल्लई की भूमि;

दक्षिण में राजरेथिनम पिल्लई की भूमि;

पश्चिम में पिचैकारा पिल्लई की भूमि; और

पूर्व में नगरपालिका की गली।"

3. यह वाद केवल अनुतोष संख्या 6, 8 और 9 के संबंध में डिक्रीत किया गया था। अपीलकर्ताओं द्वारा इसके विरुद्ध एक अपील प्राथमिकता दी गई थी। उत्तरदाताओं द्वारा एक प्रत्याक्षेप भी प्राथमिकता दी गई थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अपील और प्रत्याक्षेप दोनों को खारिज कर दिया गया था। अपीलकर्ताओं द्वारा इसके विरुद्ध मद्रास उच्च न्यायालय में एक द्वितीय अपील प्राथमिकता दी गई थी जिसे एस.ए. संख्या 1674/1982 के रूप में अंकित किया गया था। कुछ उत्तरदाताओं ने भी प्रत्याक्षेप प्राथमिकता दी थी। उच्च न्यायालय ने दिनांक 16.9.1998 के एक निर्णय और डिक्री के कारण, यहाँ अपीलकर्ताओं द्वारा प्राथमिकता दी गई अपील को खारिज करते हुए, अनुतोष संख्या 8 और 9 के संबंध में उत्तरदाताओं के प्रत्याक्षेपों को मंजूर कर लिया। अपीलकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दायर एक विशेष अनुमति याचिका में यह तर्क दिया गया था कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 की उपधारा (4) के उपबंध भी प्रत्याक्षेपों के संबंध में आकर्षित होंगे। उक्त तर्क को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था और मामले को उच्च न्यायालय को उचित विधि के सारवान् प्रश्न विरचित करने के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए विधि के प्रश्न इस प्रकार हैं:

"(1) क्या अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय विधि के अनुसार वाद मद संख्या 8 और 9 के विवरण से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य की उपेक्षा करने में और प्रतिवादी साक्षी संख्या 2 के साक्ष्य का गलत पाठ करने में सही था, जिससे

वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अपीलकर्ताओं उन अनुतोषों के स्वत्वदार हैं जो प्रत्याक्षेप की विषय-वस्तु हैं?

(2) क्या अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, विशेष रूप से प्रदर्श ए 1, ए 2, ए 3, ए 17, ए 18 और ए 21 में संपत्ति के विवरण पर विचार न करने के कारण दूषित हैं?"

4. आक्षेपित निर्णय के कारण, यहाँ के उत्तरदाताओं के उक्त प्रत्याक्षेप को मंजूर कर लिया गया था।

5. यहाँ पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर ध्यान देने से पहले, यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय के समक्ष मुकदमेबाजी के पिछले दौर में यह इंगित किया गया था कि उत्तरदाताओं में से एक, एम. मारिमुथु अम्माल की मृत्यु बहुत पहले दिनांक 1.12.1993 को हो चुकी थी और इस प्रकार द्वितीय अपील स्वतः ही उपशमित हो गई थी; प्रत्याक्षेप भी नहीं टिक पाया। हालांकि, उक्त श्री अम्माल के विधिक प्रतिनिधियों को इस न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर लाया गया था जो हमारे समक्ष पक्षकार हैं।

6. अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. बालकृष्णन ने अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए कथित प्रश्न 'विधि के सारवान् प्रश्न' का गठन नहीं करते हैं। इस संबंध में हमारा ध्यान अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों की ओर आकर्षित किया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि सभी सुसंगत दस्तावेजों और विशेष रूप से, प्रदर्श ए 1, ए 2, ए 3, ए 17, ए 18 और ए 21 पर उनके द्वारा विस्तृत विचार किया गया था और इस प्रकार केवल इसलिए कि किसी दस्तावेज में संपत्ति के विवरण के संबंध में कोई विवाद मौजूद था, वह स्वतः ही विधि के सारवान् प्रश्न को जन्म नहीं देगा। इस निमित्त *हीरो विनोद बनाम शेषम्मल*, [2006] 5 एससीसी 545 पर

कड़ा अवलंबन रखा गया है। यह भी तर्क दिया गया था कि इस तथ्य को देखते हुए कि द्वितीय अपील के लंबित रहने के दौरान प्रत्याक्षेपकर्ताओं में से एक की मृत्यु हो गई थी, प्रत्याक्षेप का उपशमन हो जाने के कारण, और दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 4 के तहत निर्धारित अवधि के भीतर प्रत्याक्षेपकर्ताओं की संपदा के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाने लिए कोई आवेदन दायर न किए जाने के कारण, आक्षेपित निर्णय संधारणीय नहीं हो सकता है।

7. दूसरी ओर, उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री वी. प्रभाकर ने हमारा ध्यान प्रदर्श ए1 और सर्वेक्षण निपटान मानचित्र - ए7 में शामिल संपत्ति के विवरण की ओर आकर्षित किया, जिस पर स्वयं अपीलकर्ताओं द्वारा अवलंबन लिया गया है, और अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों की ओर यह तर्क देने के लिए आकर्षित किया कि विलेख में कथित सीमाएं एक-दूसरे के साथ संपत्तियों के विवरण से मेल नहीं खाती हैं, जैसा कि अभिलेख पर लाई गई सामग्रियों से प्रतीत होता है, और उस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई मामला नहीं बनता है। श्री प्रभाकर ने आग्रह किया कि वादीगण को न केवल वाद संपत्ति के संबंध में अपने स्वत्व को साबित करना आवश्यक है बल्कि उसकी पहचान भी साबित करनी होगी ताकि पारित की गई डिक्री, यदि कोई हो, को निष्पादित किया जा सके और उस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा विधि के प्रश्न सही ढंग से तैयार किए गए हैं। यह तर्क दिया गया था कि किसी दस्तावेज का गलत निर्वचन विधि के प्रश्न को जन्म देगा। श्री बालकृष्णन के दूसरे तर्क के उत्तर में, यह प्रस्तुत किया गया था कि इस तथ्य के अलावा कि ऐसे प्रश्न न तो उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए हैं और न ही अपील के ज्ञापन में, और चूंकि स्वीकृत रूप से प्रत्याक्षेपकर्ता एक ही परिवार के सदस्य हैं और मृतक प्रत्याक्षेपकर्ता के कुछ वारिस और विधिक प्रतिनिधि पहले से ही अपील के पक्षकार हैं, इसलिए मृतक की संपदा का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व किया गया है और उस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रत्याक्षेप

उपशमित नहीं हुआ।

8. इस न्यायालय ने एक सीमित नोटिस जारी किया था, अर्थात् केवल संपत्ति के अनुतोषों की मद संख्या 9 के संबंध में। इस प्रकार, मद संख्या 8 के संबंध में विशेष अनुमति याचिका दिनांक 8.5.2003 के आदेश के निबंधनों के अनुसार खारिज कर दी गई थी। उक्त आदेश अंतिम हो चुका है।

9. अपीलकर्ताओं दिनांक 16.9.1935 के उक्त विक्रय विलेख के आधार पर स्वत्व का दावा करते हैं।

10. वे, जैसा कि ऊपर ध्यान दिया गया है, बड़ी संख्या में अनुतोषों का दावा करते थे। अनुतोषों में वाद संपत्तियों और यहाँ के उत्तरदाताओं द्वारा दावा की गई संपत्तियों को विभाजित करने वाली किसी भी भूमि के संबंध में उनका सुखाचार अधिकार शामिल था। वादी को, इससे पहले कि उसका वाद डिक्रीत किया जाए, प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में वाद हेतुक स्थापित करना चाहिए जिसके लिए कब्जे की बहाली के अनुतोष का दावा किया गया है। यदि वाद डिक्रीत हो जाता है, तो निष्पादन न्यायालय उसका कब्जा सौंपने में सक्षम होना चाहिए और इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि वाद संपत्ति पर्याप्त रूप से पहचान योग्य होनी चाहिए। जब ऐसे अनुतोष का दावा किया जाता है तो वादी को यह दिखाना होगा कि उसने क्या खरीदा था और विवाद उत्पन्न होने की स्थिति में न्यायालय संपत्ति की पहचान का अवधारण किस प्रकार करेगा।

11. इसलिए, उस विक्रय विलेख की, जिसके आधार पर अपीलकर्ताओं अपने अधिकार, स्वत्व और हित का दावा करते हैं, अर्थात् दिनांक 16.9.1935 के विक्रय विलेख की, सर्वेक्षण निपटान मानचित्र के आधार पर तैयार किए गए कथित कच्चे नक्शे (प्रदर्श ए-17) से केवल तुलना करने पर ही वाद संपत्ति की उचित पहचान होनी चाहिए। यह वैसा हो सकता है जैसा

श्री बालकृष्णन द्वारा तर्क दिया गया था कि वर्ष 1935 की अवधि और वाद संस्थित करने की तारीख के बीच आस-पास की संपत्तियों के कई हस्तांतरण हुए हैं या मूल स्वामियों की मृत्यु हो गई होगी; लेकिन जब स्वयं वादीगण ने गलियों और निर्मित चबूतरे आदि के अस्तित्व के मुकाबले वाद की संपत्तियों की पहचान स्थापित करने के लिए एक रेखाचित्र पर अवलंबन किया था, तो यह दिखाना उन्हीं का काम था कि संपत्ति का विवरण विक्रय विलेख में उल्लिखित विवरण से मेल खाता है। विक्रय विलेख में पिचाईकारा पिल्लई और अन्य की संपत्ति के दक्षिण में जो होना चाहिए था, उसे उक्त संपत्ति के पश्चिम में दिखाया गया है। इस या उस तरह से किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है कि क्या संपत्ति की मद संख्या 9 के पूर्व में स्थित गली और पूर्वी तरफ कुछ दूरी पर स्थित नगरपालिका की गली, जिसके बीच पलानीसामी पिल्लई की भूमि का एक टुकड़ा है, को पहचान बिंदु के रूप में लिया जा सकता है। हमें प्रदर्श ए-3 सहित अन्य दस्तावेजों को भी दिखाया गया है जिसमें संपत्ति का विवरण इस प्रकार दिया गया है:

"तिरुचिरापल्ली जिला में, श्रीरंगम उप-जिला, तिरुचिरापल्ली तालुक, थिम्मरायासमूद्रम गाँव, वीरेश्वरम, पूर्वी सड़क, श्रीरंगम नगरपालिका, द्वितीय वार्ड, टी.एस. संख्या 1960/2 और 4 में, 7 फीट चौड़े मार्ग की सामान्य गली के पश्चिम।

टी.एस. संख्या 1960 में सांबासिवम पिल्लई की संपत्ति के खाली भूखंड के उत्तर; उपरोक्त टी.एस. संख्या 1960/1 में नगरपालिका की उत्तर से दक्षिण गली के पूर्व और पलानीसामी पिल्लई तथा कुंजम्माल के खाली भूखंड के दक्षिण।

7 फीट चौड़े मार्ग की सामान्य गली के पश्चिम और 1960/1 में, इन चारों सीमाओं के भीतर उत्तर से दक्षिण 4-1/4 मानक फीट, पूर्व से पश्चिम 102 मानक फीट। संपत्ति श्रीरंगम नगरपालिका सीमा के अंतर्गत समाविष्ट है और तीसरी मद मनई के रूप में खाली स्थान 4 फीट निचले स्तर पर टी.एस. संख्या 1960/1 में स्थित है।"

12. उक्त विलेख वर्ष 1966 में निष्पादित किया गया था। संपत्ति का विवरण नगरपालिका की उत्तर से दक्षिण गली के पूर्व में बताया गया था, जिसे कच्चे रेखाचित्र में विवादित संपत्ति के दक्षिण में स्थित दिखाया गया था।

13. इसमें किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता है कि विधि का एक सारवान् प्रश्न विधि के प्रश्न से भिन्न होता है। किसी दस्तावेज का ऐसा निर्वचन जो वाद के किसी पक्षकार के स्वत्व के मूल से जुड़ा हो, निर्विवाद रूप से विधि के एक प्रश्न को जन्म देगा।

14. *रेवरेंड फादर एम.एस. पौलोस बनाम वर्गीज व अन्य*, [1995] अनुपूरक. 2 एससीसी 294 में, किसी दस्तावेज में शामिल पाठों के निर्वचन को विधि के एक सारवान् प्रश्न से संबंधित माना गया था। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के लिए जो निषिद्ध है, वह तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना है। यह सीमित क्षेत्राधिकार, अन्य बातों के साथ-साथ, तब प्रयोगात्मक हो जाती है जब निष्कर्ष साक्ष्य के गलत पाठ पर आधारित हों या इतने विकृत हों कि कोई भी तर्कसंगत या सामान्य समझ वाला व्यक्ति उक्त दृष्टिकोण नहीं अपना सकता था।

15. इस न्यायालय ने *हीरो विनोद* (उपरोक्त) में यह राय व्यक्त की कि कंडिका 4 से निर्धारित निम्नलिखित विधि का प्रश्न विधि के एक सारवान् प्रश्न को जन्म देता है और अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों को अपास्त करते हुए यह कहा:

"12. हम पहले उच्च न्यायालय की तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने की क्षेत्राधिकार से संबंधित प्रश्न पर विचार करेंगे। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा *चंद्र भान बनाम पम्मा बाई और सखाहाड़ी परवतराव कारहाले बनाम भीमशंकर परवतराव कारहाले* का संदर्भ दिया गया था। जहाँ तक पहले

निर्णय का संबंध है, अधीनस्थ न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए यह माना गया था कि तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप न्यायोचित नहीं है। वह प्रश्न कब्जे से संबंधित था और मुख्य रूप से तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करने वाले दोनों न्यायालयों ने कब्जे के प्रश्न का निर्णय किया था। उस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए था। जहाँ तक दूसरे निर्णय का संबंध है, स्थिति लगभग वैसी ही थी और यह माना गया था कि अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों के विपरीत और जिनका न तो अभिवचनों, विरचित विवाद्यकों या अधीनस्थ न्यायालयों में से किसी के द्वारा वास्तव में न्यायनिर्णीत प्रश्नों में कोई आधार नहीं था, उन निष्कर्षों को संधारणीय नहीं रखा जा सकता है। वह निर्णय भी अपीलकर्ता की किसी भी तरह से सहायता नहीं करता है क्योंकि वर्तमान मामले में तथ्यात्मक परिदृश्य पूरी तरह से भिन्न है।"

16. उच्च न्यायालय के निर्णय को बनाए रखने के उद्देश्य से इस न्यायालय ने मामले में परीक्षित साक्षियों के बयानों का भी अवलोकन किया।

17. यह प्रश्न हाल ही में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था; यद्यपि सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 130(ए) के तहत एक मामले में, *सीमा शुल्क आयुक्त (निवारक) बनाम विजय दशरथ पटेल*, [2007] 4 एस.सी.ए.एल.इ 132 में, जिसमें यह माना गया था:

"22. हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि इस संबंध में उच्च न्यायालय की क्षेत्राधिकार सीमित है। हालांकि, विधि का सारवान् प्रश्न क्या होगा, यह मामले-

दर-मामले भिन्न होगा।

23. इसके अलावा, यद्यपि तथ्य के निष्कर्ष में तब हस्तक्षेप किया जा सकता है जब वह विकृत हो, लेकिन यह भी सर्वविदित है कि जहाँ अधीनस्थ न्यायालयों ने अभिभावी परिस्थितियों के महत्व की उपेक्षा की है और निर्णय को महत्वहीन मामलों से प्रभावित होने दिया है, वहाँ उच्च न्यायालय मामले पर विचार करने और अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचने में न्यायोचित होगा। {देखिए *मदन लाल बनाम श्रीमती गोपी और अन्य*, एआईआर (1980) एससी 1754.}

24. उच्च न्यायालय यह राय देने का भी स्वत्वदार होगा कि उसके विचारार्थ विधि का एक सारवान् प्रश्न उत्पन्न होता है जब साक्ष्य का मूल्यांकन करने में महत्वपूर्ण और सुसंगत तथ्यों की उपेक्षा की गई हो और विधिक सिद्धांतों को लागू न किया गया हो। अप्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखकर किसी निर्णय पर पहुँचना भी विधि के एक सारवान् प्रश्न को जन्म देगा। हालांकि, यह भिन्न हो सकता है कि केवल तथ्यों के उसी समुच्चय पर उच्चतर न्यायालय एक अलग दृष्टिकोण अपनाता है। {देखिए *सीमा शुल्क आयुक्त, बॉम्बे बनाम स्वास्तिक वूलन्स (पी) लिमिटेड और अन्य*, [1988] अनुपूरक. एससीसी 796; और *मेट्रोआर्क लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, कलकत्ता*, [2004] 12 एससीसी 505}।

25. यहाँ तक कि ऐसे मामले में जहाँ साक्ष्य का गलत पाठ किया गया हो, उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी। {देखिए *पश्चिम बंगाल विद्युत नियामक आयोग बनाम सी.ई.एस.सी. लिमिटेड*, [2002] 8 एससीसी 715; और *सीमा शुल्क आयुक्त, मुंबई बनाम ब्यूरो वेरिटास और अन्य*,

[2005] 3 एससीसी 265}।"

18. इस न्यायालय ने हीरो विनोद (उपरोक्त) में यह माना था:-

"24. इस मामले के लिए सुसंगत दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 से संबंधित सिद्धांतों को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है:

(i) किसी दस्तावेज के पाठों या अंतर्वस्तु से तथ्य का अनुमान लगाना तथ्य का एक प्रश्न है। लेकिन किसी दस्तावेज के निबंधनों का विधिक प्रभाव विधि का एक प्रश्न है। किसी दस्तावेज का अर्थान्वयन जिसमें विधि के किसी सिद्धांत का अनुप्रयोग शामिल हो, वह भी विधि का एक प्रश्न है। इसलिए, जब किसी दस्तावेज का गलत अर्थान्वयन हुआ हो या किसी दस्तावेज का अर्थान्वयन करने में विधि के किसी सिद्धांत का गलत अनुप्रयोग हुआ हो, तो यह विधि के प्रश्न को जन्म देता है।

(ii) उच्च न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि मामले में विधि का एक सारवान् प्रश्न शामिल है, न कि केवल विधि का एक प्रश्न। मामले के निर्णय पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाला विधि का प्रश्न (अर्थात्, ऐसा प्रश्न जिसका उत्तर वाद के पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करता है) विधि का एक सारवान् प्रश्न होगा, यदि वह विधि के किन्हीं विशिष्ट उपबंधों या बाध्यकारी मिसालों से उभरते हुए सुस्थापित विधिक सिद्धांत के अंतर्गत नहीं आता है, और उसमें एक विचारणीय विधिक मुद्दा शामिल है। विधि का एक सारवान् प्रश्न इसके विपरीत स्थिति में भी उत्पन्न होगा, जहाँ विधिक स्थिति स्पष्ट है, चाहे विधि के अभिव्यक्त उपबंधों के कारण हो या बाध्यकारी मिसालों के कारण, लेकिन अधीनस्थ न्यायालय ने मामले का निर्णय या तो उपेक्षा करते हुए या ऐसे विधिक सिद्धांत के विपरीत किया है। दूसरे प्रकार के मामलों में, विधि का सारवान् प्रश्न इसलिए उत्पन्न नहीं होता कि कानून अभी भी

विचारणीय है, बल्कि इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर दिया गया निर्णय विधि की सुस्थापित स्थिति का उल्लंघन करता है।

(iii) सामान्य नियम यह है कि उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। लेकिन यह कोई पूर्ण नियम नहीं है। कुछ अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवाद वे हैं जहाँ (i) अधीनस्थ न्यायालयों ने महत्वपूर्ण साक्ष्य की उपेक्षा की है या बिना किसी साक्ष्य के कार्य किया है; (ii) न्यायालयों ने कानून को त्रुटिपूर्ण ढंग से लागू करके प्रमाणित तथ्यों से गलत निष्कर्ष निकाले हैं; या (iii) न्यायालयों ने सबूत का भार गलत तरीके से डाला है। जब हम बिना किसी साक्ष्य पर आधारित निर्णय का संदर्भ देते हैं, तो यह न केवल उन मामलों को संदर्भित करता है जहाँ साक्ष्य की पूर्ण कमी है, बल्कि किसी भी ऐसे मामले को भी संदर्भित करता है, जहाँ साक्ष्य, समग्र रूप से लिए जाने पर, निष्कर्ष का समर्थन करने में तार्किक रूप से सक्षम नहीं है।"

19. इस प्रकार जब अधीनस्थ न्यायालयों ने अन्य दस्तावेजों और वाद भूमियों की पहचान के मानचित्र के साथ पठित स्वत्व के दस्तावेज का गलत पाठ और गलत निर्वचन किया, जिस पर स्वयं वादीगण ने अवलंबन किया था, तब वाद के पक्षकारों के बीच उच्च न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए विधि का एक सारवान् प्रश्न उत्पन्न हुआ।

20. इसलिए, हमें श्री बालकृष्णन के उक्त तर्क में कोई गुण-दोष नहीं मिलता है।

21. निर्विवाद रूप से, एक अपील स्वतः ही उपशमित हो जाएगी जब तक कि किसी मृतक वादी या प्रतिवादी के वारिसों और विधिक प्रतिनिधियों को दीवानी प्रक्रिया संहिता में निर्दिष्ट अवधि के भीतर अभिलेख पर न लाया जाए। हालांकि, यदि इसके लिए उचित आवेदन दायर किया जाता है तो अपील के उपशमन को अपास्त किया जा सकता है। हालांकि, यह

प्रश्न कि कोई वाद या कोई अपील उपशमित हुई है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्य पर निर्भर करेगा। यदि ऐसा प्रश्न उठाया गया होता, तो उत्तरदाताओं यह दिखा सकते थे कि उनका प्रत्याक्षेप उपशमित नहीं हुआ था क्योंकि मृतक प्रत्याक्षेपकर्ता की संपदा का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व किया गया था।

22. *मिठाईलाल दलसिंगार सिंह एवं अन्य बनाम अन्नाबाई देवराम किनी व अन्य*, [2003] 10 एससीसी 691 में, जिस पर स्वयं श्री बालकृष्णन ने अवलंबन किया था, इस न्यायालय ने माना:

"8. चूंकि उपशमन के परिणामस्वरूप मामले के गुण-दोष पर सुनवाई से वंचित होना पड़ता है, इसलिए उपशमन के उपबंध का कड़ाई से निर्वचन किया जाना चाहिए। दूसरी ओर, उपशमन को अपास्त करने और उपशमन के परिणामस्वरूप होने वाली खारीजी की प्रार्थना पर उदारतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। उपशमन को अपास्त करने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना किए बिना विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने की एक साधारण प्रार्थना को मूल रूप से उपशमन को अपास्त करने की प्रार्थना के रूप में माना जा सकता है। वैसे ही वादीगण में से किसी एक के संबंध में उपशमन को अपास्त करने की प्रार्थना को संपूर्ण रूप से वाद के उपशमन को अपास्त करने की प्रार्थना के रूप में माना जा सकता है। परिसीमा की निर्धारित अवधि के भीतर विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए आवेदन करने में विफल रहने पर वाद का उपशमन स्वतः हो जाता है और वाद को उपशमित के रूप में खारिज करने वाले किसी विशिष्ट आदेश की आवश्यकता नहीं होती है। एक बार जब कानून के मामले के रूप में वाद उपशमित हो गया हो, भले ही वाद को उपशमित के रूप में खारिज करने का कोई विशिष्ट आदेश अभिलेख पर पारित

न किया गया हो, फिर भी अभिलेख पर लाए जाने की प्रस्थापना करने वाले विधिक प्रतिनिधि या मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने की प्रस्थापना करने वाले किसी अन्य आवेदक को उपशमन को अपास्त करने की मांग करनी होगी। विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने की प्रार्थना को, यदि अनुमति दी जाती है, तो उपशमन को अपास्त करने का प्रभाव होगा क्योंकि उपशमन को अपास्त करने का अनुतोष यद्यपि स्पष्ट शब्दों में नहीं मांगा गया है, फिर भी वास्तव में प्रभावी रूप से मांगा जा रहा है और वह आवश्यक रूप से अंतर्निहित है। ऐसे मामलों में अत्यधिक तकनीकी या पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण की आवश्यकता नहीं है।

9. न्यायालयों को न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण अपनाना होगा जो इस सर्वोच्च विचार से प्रेरित हो कि सामान्यतः किसी वादी को गुण-दोष के आधार पर वाद का अवधारण कराने के अवसर से तब तक वंचित नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि उसने घोर लापरवाही, जानबूझकर की गई निष्क्रियता या कदाचार जैसी किसी बात से खुद को न्यायालय की अनुकंपा प्राप्त करने से वंचित न कर लिया हो। उपशमन को अपास्त करने की प्रार्थना को स्वीकार करने वाले विचारण न्यायाधीश की राय और आदेश 22 के नियम 9 के उप-नियम (2) तथा परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थ के भीतर पर्याप्त कारण की उपलब्धता के प्रश्न पर उनके निष्कर्ष को महत्व दिया जाना चाहिए, और एक बार इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद सामान्यतः उच्चतर क्षेत्राधिकार द्वारा इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।"

23. उक्त निर्णय का विनिश्चय-आधार हमारे द्वारा इसके पूर्व की गई टिप्पणियों के प्रतिकूल नहीं जाता है। अनुपात हमारे द्वारा ऊपर की गई टिप्पणियों के प्रतिकूल नहीं है। किसी

वाद या अपील के उपशमन के संबंध में प्रश्न नहीं उठाया गया है। हम इस चरण पर तथ्य के इस विवादित प्रश्न पर विचार नहीं कर सकते हैं कि क्या मृतक प्रत्याक्षेपकर्ताओं की संपदा का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हुआ है या नहीं।

24. पूर्वोक्त कारणों से, हमें इस अपील में कोई गुण-दोष नहीं मिलता है। तदनुसार इसे खर्च सहित खारिज किया जाता है। अधिवक्ता की फीस 10,000/- रुपये निर्धारित की जाती है।

अपील खारिज।

आर.पी./-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।